खजाना

हिन्दी ADDA

मनोज कुमार पांडेय

खजाना

https://www.hindiadda.com/khajana/

इतिहास, भूगोल और किंवदंतियाँ

हम पंडित रामअभिलाष के वंशज थे। जिनके बारे में गाँव-गिराँव के बूढ़े न जाने कितने किस्से अपने भीतर छुपाए बैठे थे। वह हमारे इलाके के लगभग मिथकीय व्यक्ति थे। हम इस बात के गर्व-बोध से भरे थे कि हम रामअभिलाष के वंशज हैं। पर कई बार दूसरों के पास उनसे जुड़े किस्से कुछ ज्यादा ही मिलते और इस तरह से हमको खुद हमारे बारे में नई नई बातें पता चलती रहतीं।

हम यहाँ के मूल निवासी नहीं थे। आज के लगभग डेढ़ सौ साल पहले एक बच्चे को अपने साथ लिए रामअभिलाष यहाँ प्रकट हुए थे। वह 1857 में शामिल थे। और अब जबकि विद्रोही हार गए थे और जगह जगह पेड़ों पर लटकाए जा रहे थे वह अपने इकलौते बेटे के साथ भाग निकले थे। उनके परिवार के सारे के सारे लोग पेड़ों पर लटका दिए गए थे। अब वहाँ उनका कुछ भी नहीं बचा था। वापसी की कोई संभावना भी।

अभिलाषपुर, जहाँ हम आज रहते हैं वहाँ आने के पहले वह कहाँ कहाँ भटके इसके बारे में किसी को कुछ भी नहीं मालूम। इस बारे में खुद उन्होंने भी कभी किसी को कुछ भी नहीं बताया। पर 1857 के लगभग दस सालों बाद जब वह यहाँ पहुँचे तो एक तेरह-चौदह साल का किशोर और एक कुत्ता उनके साथ थे। वह दोनों पिता-पुत्र की बजाय गुरु-शिष्य की तरह का व्यवहार कर रहे थे। उस किशोर ने कभी अकेले में भी उन्हें पिता नहीं कहा बल्कि गुरूजी ही कहता रहा। यह इतना लंबा चला कि परंपरा ही चल निकली। तब से हमारे परिवार में लगातार पिता को गुरू और पुत्र-पुत्री को चेला-चेली कहा जाता रहा। यहाँ तक कि यह परंपरा आज भी कई घरों में बची हुई है।

हम रामअभिलाष की आठवीं पीढ़ी से हैं।

जब वह यहाँ आए तो उन्होंने यहाँ के जमींदार लोचन तिवारी से अपने रहने के लिए थोड़ी सी जमीन माँगी। उन्होंने लोचन से कहा था कि जो जमीन उनके किसी काम की न हो वही उन्हें दान में दे दी जाय। और न जाने किस अदेखे के संकेत से लोचन की निगाहें अनायास ही इस टीले की तरफ उठ गई थीं। लोचन ने उन्हें गाँव की पश्चिमी तरफ का सैकड़ों सालों से खाली पड़ा टीला दे दिया। पूरा का पूरा। यह ऊँचा-नीचा टीला कई बीघे में फैला हुआ था। इस पर कुछ नीम-बबूल के पेड़ों के अलावा नागफनियों और रूस का पूरा एक जंगल फैला हुआ था।

कहते हैं कि यहाँ कभी किसी छोटे-मोटे राजा का महल होता था जो सत्तावन के लगभग सौ साल पहले के किसी सत्तावन की लड़ाई में ध्वस्त कर दिया गया था। राजा और उसके परिवार के लोग मार दिए गए थे। नौकर-चाकर-कारिंदे सब मार दिए गए थे। शायद ही कोई बचा हो। कहते हैं कि कोई एक कुआँ था जो लाशों से पाट दिया गया था। और लूट-पाट के बाद किले में आग लगा दी गई थी। ढहा दिया गया था उसे।

इसके पीछे कोई गहरी बात न होकर एक छोटी सी नाक की लड़ाई थी जो धीरे धीरे एक भयानक और असहनीय घृणा में बदल गई थी। उनके पास इसके अतिरिक्त कोई और चारा नहीं बचा था कि वे उन्हें मार-काट डालें जिनसे कि वह घृणा करते थे।

कहते हैं कि यह हमला रात के तीसरे पहर में किया गया था। मशालों की रोशनी में चमकती हुई तलवारों और खंजरों ने न जाने कितने शरीरों से उनकी चेतना छीन ली थी। और उन्हें हमेशा हमेशा के लिए गहरी नींद में सुला दिया था। हमलावरों ने अपने चेहरे पर काले कपड़े बाँध रखे थे। पर आँखें तो सबकी खुली थीं जिनमें एक हत्यारी घृणा तैर रही थी। इसके बावजूद मरने वालों ने मारने वालों को पहचान लिया था और अविश्वास से उनकी आँखें फैल गई थीं।

पर यह पूरी तरह सच नहीं है। ज्यादातर मरने वालों को तो उनके मरने का पता ही नहीं चला था। सोते सोते ही उनका गला काट दिया गया था। इसलिए क्या पता कि वे आज तक अपने को सोता हुआ ही मान रहे हों और अपने जगने का इंतजार कर रहे हों। उन्हें इस बात पर आश्चर्य हो रहा हो कि अचानक से उनकी रात इतनी लंबी और काली कैसे हो गई है! और इस बीच उन्हें इतने रक्तरंजित सपने क्यों आ रहे हैं। क्या पता कि बहुतों ने सपनों में ही दम तोड़ दिया हो और अभी तक यह माने बैठे हों कि नींद खुलते ही उनका सपना टूट जाएगा और वह और वह फिर से जी उठेंगे।

पर यह सब तो सैकड़ों साल पुरानी बातें हैं। लगभग ढाई सौ साल पहले की बातें। अब तक तो वे सोते सोते भी इंतहाई रूप से थक गए होंगे और उनकी आँखें भी दुखने लगी होंगी। इसीलिए पुनर्जन्म बहुत जरूरी चीज है।

कहते हैं कि लाशों के सड़ने की बदबू वहाँ अगले सौ सालों तक फैली रही। लोगों के लिए इसके आसपास से गुजरना भी मुश्किल बना रहा। यह तभी दूर हुई जब रामअभिलाष वहाँ बसे।

रामअभिलाष ने अकेले दम कुआँ खोदा। अकेले दम पर ईंटें पाथीं और अकेले दम पर ही अपना एक छोटा सा घर खड़ा किया। जो दूर से ही दिखाई पड़ता। लोग अचरज से

भर जाते कि कोई अकेला व्यक्ति यह सब कैसे कर सकता है। पर यह सब सोचते हुए वे पता नहीं क्यों उस पंद्रह वर्षीय किशोर को भूल ही जाते जो इस सब में रामअभिलाष का बराबर का भागीदार था। दोनों ने मिलकर अगले चार-पाँच सालों में उस टीले को इतना खूबसूरत बना दिया कि यह लोगों के लिए अचंभा पैदा करने वाली बात रही। और यहीं से तमाम इस तरह की कथाएँ जन्मीं कि पंडित रामअभिलाष ने टीले पर के भूतों को साध लिया है और यह उन्हीं की की मेहनत का फल है।

भूतों की बात तो रामअभिलाष जानें पर यह उनकी व्यवहार बुद्धि ही थी जिसने यह कर दिखाया था। उन्होंने उसी खंडहर में दबी सैकड़ों साल पुरानी ईंटें खोद निकाली थी और मिट्टी के गारे से एक पर एक जमाते गए थे। ईंटें बाहर आकर खुश हो गई थीं और उन्होंने रामअभिलाष का भरपूर साथ दिया था। ईंटों ने ही उन्हें एक कुएँ का भी रास्ता दिखाया था जिसमें से कम से कम सौ सालों से पानी नहीं निकाला गया था। उन सौ सालों का बचा हुआ पाली रामअभिलाष पिता-पुत्र ने अगले तीन-चार सालों में ही खर्च कर डाला था। नतीजे में यह टीला एक हरे-भरे महकते हुए उपवन में बदल गया था।

यह सब इतना धीरे-धीरे और सहजता से हुआ कि इस तरफ लोगों का ध्यान ही नहीं गया और जब गया तो वे अवाक रह गए। लोचन तिवारी तक भी यह खबर पहुँची और एक सहज उत्सुकता के साथ टीले पर पहुँच ही गए। ऊपर किशोर पेड़ों और तरह तरह के फूलों से आती हुई खुशबू ने उनका स्वागत किया।

शायद इसमें वातावरण के सम्मोहन का भी असर रहा हो जब उन्होंने रामअभिलाष के तेजस्वी बेटे को देखा। जिसे इन चार पाँच सालों में उन्होंने न जाने कितनी बार देखा होगा। पर आज के देखने में कुछ खास था। यह किशोर जिसका नाम राम इकबाल था अब लगभग बीस साल का हो रहा था। और उसके चेहरे पर दाढ़ी-मूँछ आए अभी थोड़ा ही समय बीता था। अचानक से लोचन तिवारी के मन में एक खयाल उभरा और किसी निश्चय की तरह भीतर बैठ गया।

उन्होंने उसी दिन रामअभिलाष के सामने यह प्रस्ताव रखा कि वह अपनी बेटी की शादी उनके बेटे से करना चाहते हैं। जिसे रामअभिलाष ने बिना किसी अतिरिक्त उत्साह के हरि की इच्छा कहकर स्वीकार कर लिया। और बदले में बहू के साथ पचासों बीघे जमीन और टीले पर एकाधिकार पाया।

यह सब बहुत पुरानी बातें हैं।

अब तो रामअभिलाष का घर रामअभिलाष के पुरवा के रास्ते अभिलाषपुर में बदल गया है। जिसमें करीब पैंतीस घर हमारे ही पट्टीदारों के हैं। बाकी पंद्रह बीस घर उन जातियों के हैं जिन्हें हमने अपने काम के लिए समय समय पर यहाँ ला बसाया। इस तरह से एक बाप-बेटा या गुरु-चेला से शुरू हुआ यह सिलसिला आज एक पूरे गाँव में बदल गया है।

बीच में बहुत सारे किस्से बने-बिगड़े। जैसे बहुतेरे लोगों का मानना था कि राम इकबाल रामअभिलाष के बेटे नहीं थे। रामअभिलाष का बेटा तो गदर के बाद की दस साला बदहाली की भेंट चढ़ चुका था। यह तो कोई अनाथ लड़का था जिसके परिजन सत्तावन में मारे गए थे और जो इधर-उधर भटकते हुए छुपते-भागते रामअभिलाष से जा टकराया था। कुछ लोग तो यह भी कहते थे कि वह मुसलमान लड़का था जिसे रामअभिलाष ने हिंदू बनाकर पेश किया था।

हमारे कुछ पट्टीदार जिनके पुरखे मुसलमान हो गए थे उसे वे मुसलमान ही मानते थे और उसका नाम इकबाल बताते थे जिसे रामअभिलाष ने बदलकर रामइकबाल कर दिया था। खैर यह सब किस्से हैं। यह कितने सच हैं कितने झूठ यह जानने का हमारे पास कोई भी जरिया नहीं था। और इससे भी बढ़कर बात यह थी कि इन किस्सों के बावजूद हमारा जीवन चल रहा था। हम जमींदारों के दामाद और भानजे भतीजे थे। हम पूरे इलाके के मानदान थे। और धीरे धीरे करके पूरे इलाके की पुरोहिताई और गुरुआने पर हमारा कब्जा था। और क्या चाहिए था हमें। अब हम अभिलाषपुर के निवासी थे और अभिलाषपुर हमारा था।

हमारा वर्तमान यानी कौड़ी के तीन होना

जैसे जैसे हमारे घर बँटते गए वैसे वैसे हमारी जमीनें और संपन्नता भी बँटती गई। और आज की तारीख में हम कौड़ी के तीन थे। गाँव के कुछ दूसरे लोगों की तुलना में हमारे पास एक चमकदार भूत जरूर था पर वह भूत हमारे किसी काम का नहीं था।

हमारे पास अब थोड़े थोड़े खेत थे बस। पेड़ और बाग ज्यादातर साझा ही थे। अब हममें से कुछ लोगों को यहाँ से बाहर निकलने के बारे में सोचना चाहिए था। पर बाहर निकलने का खयाल ही हमारा जी डराता था। बाहर निकलते ही हमें श्रम करना पड़ता और श्रम हमें भूत की तरह से डराता था।

हमारे बीच से कुछ लोग बाहर जरूर गए थे पर वह गद्दियों पर गए थे। उन्होंने ऐसी लड़कियों से ब्याह रचाया था जिनके भाई नहीं थे। और वे ससुराल जाकर जम गए थे। इसी तरह से कुछ दूसरे अभिलाषपुर आए भी थे।

अपवाद मात्र एक थे। करीब पाँच-छह पीढ़ी पहले हमारे एक पट्टीदार बाहर निकले थे। और न जाने किन परिस्थितियों में वह किसी मुस्लिम जमींदार के यहाँ खाना पकाने की नौकरी कर ली। जब कई साल बाद वह वापस लौटे तो उनके लौटने के पहले ही उनके बारे में तमाम सूचनाएँ हम तक पहुँच चुकी थीं। सो उनके बाकी पट्टीदारों ने उनके साथ रोटी का संबंध तोड़ लिया।

बदले में कुछ दिनों की कशमकश के बाद एक दिन उन्होंने मौलवी बुलाया और बाकायदा मुसलमान हो गए।

वह भी हमारे ही हिस्से थे। जो खून हमारी रगों में बहता था वही उनकी रगों में भी। पर धर्म बदलते ही वह हमारे लिए बेगाने बल्कि अछूत हो गए थे। हम उनसे दुश्मनों की तरह से बर्ताव करने लगे। शायद यही वजह थी कि जब पाकिस्तान बना तो वह उसमें शामिल होने वाले जत्थे में तुरंत ही शामिल हो गए। दो बेटे भी उनके साथ ही गए। बाकी दो बेटों और उनकी पत्नी ने उनके साथ जाने से मना कर दिया। और वे यहीं रह गए हमारे साथ। अपनी पूरी ठसक के साथ। एक मस्जिद भी खड़ी कर ली है। और अब कुल मिलाकर नौ घर हैं।

जो यहाँ से गए वह पाकिस्तान पहुँचे की नहीं, अगर पहुँच गए तो उनके वंशज वहाँ किस हाल में हैं इस बारे में हमें कुछ भी नहीं पता।

पर हम जो यहाँ रह गए थे अब छीज रहे थे धीरे धीरे। हमारे कुछ गिने-चुने पट्टीदारों को छोड़ दें जिन्होंने सरकारी नौकरियाँ हासिल कीं और आसपास के शहरों में बस गए। वे अब अभिलाषपुर कभी कभार ही आते हैं। ज्यादातर अपनी खेती-बारी का हिसाब करने। जोकि हममें से ही कोई जोत रहा होता है।

एक समय था कि जब हमारे परिवार के लोग खेती के कामों में हाथ भी नहीं लगाते थे। पहले के जमाने में बेगार, बाद में मजदूरी और अधिए पर होती रहीं खेतियाँ। एक घमंड भरा आप्तवचन था कि खेत में काम करना हम ब्राह्मणों का काम नहीं। और करते भी क्यों जब इतनी सस्ती दरों पर मजदूर और हलवाहे उपलब्ध थे। यह लगभग सही होगा अगर कहा जाय कि हम मेहनत करना भूल ही चुके थे।

बाद में यह समय भी आया कि अगर हम खुद से खेती में न लगते तो शायद भूखों ही मर जाते याकि हमें अभिलाषपुर छोड़कर काम-धंधे की तलाश में कहीं बाहर निकलना पड़ता।

सबसे पहले उन लोगों ने अपना काम खुद करना शुरू किया जो मुसलमान हो चुके थे। बाद में उनकी देखा-देखी छेदी पंडित भी एक दिन हल बैल के साथ खेत में दिखाई दिए। यह एक न देखा गया दृश्य था। अभिलाषपुर के ज्यादातर पंडितों ने उनके इस कदम की घनघोर भर्त्सना की। उन्हें बिरादरी बाहर करने कि धमकियाँ दी गईं। पर वह अविचल रहे। उन्होंने सीधे एक वाक्य से सारी धमकियों को खारिज कर दिया कि बिरादरी को देखूँ या अपने बच्चों का मुँह देखूँ।

धीरे धीरे सभी लोगों को छेदी पंडित के रास्ते पर चलना पड़ा। शुरुआत में शर्म के मारे कई लोगों ने रात में काम करना शुरू किया। जिससे कि काम करते हुए वह लोगों की नजरों में आने से बचे रहें। यह एक झूठमूठ का पर्दा था जिसके आरपार सब कुछ दिखता था पर इसे गिरने में भी कई साल लग गए।

पर इस सबके बावजूद स्थितियाँ दारुण ही होती चली गईं। हम खानदानी रूप से बस पुरोहिती का काम जानते थे। और अब अभिलाषपुर में ही पचासों पुरोहित थे। आसपास के गाँवों में भी उनकी संख्या कम नहीं थी। लोगों के मन में हमारी इज्जत नहीं रही थी। वे हमारे सामने ही हमारा मजाक उड़ाते। लालची, मुफ्तखोर, केंचुआ, ढोंगी जैसे विशेषणों से नवाजते। और हमसे बेहतर यह कौन जानता था कि हम यह सब सचमुच थे। ऊपर से पवित्र और आध्यात्मिक दिखने की कोशिश पर भीतर से खोखले, दीन हीन लालची, मुफ्तखोर, केंचुआ, ढोंगी।

हम परजीवी थे। पर मुश्किल यह थी कि अभी तक हम जिन पर रोब गाँठते हुए पल रहे थे उन्होंने हमसे रोब खाना बंद कर दिया था। पहले हम उन पर तरस खाते थे अब वे हम पर तरस खा रहे थे। उन्हें हमारा डर नहीं रहा था।

उनके पास जमीनें नहीं थी। वे पहले भी अपनी मेहनत की कमाई खा रहे थे। और अभी भी। अभी हममें से ज्यादातर की जमीनें घट रही थीं और उसी अनुपात में उनमें से ज्यादातर संपन्न हो रहे थे।

खुद हमारे वे पट्टीदार जो मुसलमान हो गए थे उनकी हालत भी हमसे बेहतर थी। उन्हें टेंपो चलाने से लेकर किसी कस्बे के किनारे चाय समोसे की दुकान चलाने तक से कोई एतराज नहीं था। और उनमें से एक लड़के ने अभी थोड़े दिनों पहले नजदीकी

बाजार में बाल काटने की दुकान खोली थी। क्या धर्म बदलने से संस्कार इस कदर बदल जाते हैं? हम अक्सर सोचते पर भूल जाते कि उसके बाद उन पर से उस विनाशकारी चेतना का दबाव खत्म हो गया था जिससे कि हम जूझ रहे थे। दूसरे धर्म बदलते ही उन्हें हमारी तुलना में बहुत ज्यादा शारीरिक और मानसिक संघर्षों से दो-चार होना पड़ा था। जिससे कि हम शायद कभी नहीं हुए या कि अब हो रहे हैं।

कोई नहीं जानता कि इसकी शुरुआत कैसे हुई थी पर इस मुश्किल समय में जब हमें नए सिरे से काम में जुट जाना था हम कुछ हवाई सपनों में खो गए। हमारे बीच से जो लोग काम की तलाश में या बेहतरी की तलाश में बाहर निकले हमने उन्हें नजरअंदाज कर दिया। हमें आगे की बजाय पीछे देखने में ज्यादा सुख मिलता। ऐसा करते हुए कई बार हमें एक भयानक उदासी घेर लेती पर यह उदासी भी हमें भली लगती।

यह हमें अतीत के उन चमकदार दिनों की तरफ ले जाती जहाँ सब कुछ सुनहरा था। हम बार बार उन्हीं दिनों की तरफ लौटना चाहते। हम फिर से रामअभिलाष या रामइकबाल के समय में लौट जाना चाहते। यह सब करते हुए हम एक आभासी दुनिया में पहुँच जाते जहाँ रामअभिलाष या रामइकबाल साक्षात हमारी आँखों के सामने खड़े हो जाते जबकि हममें से किसी ने भी उन्हें नहीं देखा था। और उनकी कोई तस्वीर भी हमारे पास उपलब्ध नहीं थी।

यह उन्हीं दिनों की बात रही होगी जब हममें से बहुतों ने यथार्थ की बजाय किस्सों में रहना शुरू किया होगा। रूखे वर्तमान की तुलना में किस्सों की दुनिया उन्हें ज्यादा हरी-भरी और रंगीन लगी होगी। और वे धीरे धीरे करके एक दिन वहीं पर बस गए होंगे। उन्हें अचंभा हुआ होगा जब उन्होंने वहाँ अपने अनेक पुरखों-पट्टीदारों को पाया होगा। और खुश हुए होंगे कि यहाँ वे अकेले नहीं पड़ेंगे।

हाशिए के किस्से और उनका यथार्थ में बदल जाना

हम बचपन से ही सुनते आए थे कि हमारे चारों ओर खजाने फैले हुए हैं। हमारे नीचे जमीन में जगह जगह पर अथाह धन गड़ा हुआ है। इस बात में सचाई थी पर आंशिक ही। हर घर में कुछ न कुछ मुश्किल वक्तों के लिए गाड़ कर रखा जाता था। सिक्के, मुहरें और जेवर ही नहीं बर्तन तक जमीन में गाड़ कर रखे जाते थे। गोपनीयता और सुरक्षा के लिहाज से घर का मालिक घर के सदस्यों को भी नहीं बताता था कि उसने धन कहाँ गाड़ रखा है। कई बार वह यह जानकारी किसी को दिए बिना ही मर जाता

था। ऐसे में वह गड़ा हुआ धन जहाँ का तहाँ गड़ा ही रह जाता था। और उसका मिल पाना पूरी तरह से संयोगों पर निर्भर करता था जो कि कभी कभार ही घटित होते थे।

मैं जब छोटा था तो ऐसे किस्से मुझे बहुत अपने से लगते थे जिनमें खजानों का जिक्र होता था। और हमारे इलाके में ऐसे किस्सों की कोई कमी नहीं थी। यह सभी किस्से हमारे सामने यथार्थ के शिल्प में आते थे। हमारे नजदीकी पुरखे या सचमुच के लोग उसमें हमेशा चरित्रों के रूप में मौजूद रहते थे। हम अपने पुरखों से कुछ इसी तरह से परिचित हुए।

बहुतेरे पुरखे भूतों के रूप में भी सामने आते थे। कुछ खजानों की रक्षा के लिए साँप बन गए थे। इसीलिए बचपन से ही साँप और भूत मेरे लिए दोहरे सम्मोहन की चीज रहे। एक तो डर, अनदेखे रहस्यों का सम्मोहन और दूसरे इस बात का कि मैं अपने न जाने किस पुरखे से अभी मिल रहा हूँ।

साँपों को मैं खोजता, उनका दूर तक पीछा करता। उनकी बिलों तक, पेड़ों की खोखलों तक जहाँ कि वे रहते थे, और उनके दुश्मन नेवले। साँप नेवले की लड़ाइयाँ, साँप के जहर से बचने की बूटियों के किस्से, नागमणि और उसके चमत्कारी असर के किस्से सबके सब एकदम यथार्थ की शक्ल में हमारे सामने आते। एक दूसरे से जुड़ते हुए, और खजानों का एक महावृत्तांत तैयार करते हुए।

जब मैंने स्कूल जाना शुरू किया और अगले तीन चार साल बाद जब मैंने तरह तरह के आक्रमणकारियों के बारे में जाना तो मैं हमेशा सोचता था कि वे पूरब दिशा से आए होंगे। मुझे ऐसे सपने आते जिनमें कभी अंग्रेज आक्रमण कर रहे होते तो कभी तुर्क। यह सब के सब पूरब से ही आते दिखाई पड़ते और खजानों को लूटने के बाद उसी दिशा में वापस लौट जाते।

इसके पीछे एकदम निजी वजहें थीं। पूरब की तरफ ही हमारा सबसे नजदीकी बाजार था। लोगों का ज्यादातर आना जाना पूरब की तरफ से ही था। बेड़िया-बनजारे भी पूरब की दिशा से ही आते और इसी तालाब के किनारे डेरा डालते। यह बनजारों के बारे में कायदे से कुछ भी न जानने या उनके बारे में हमारे घरों में फैले तरह तरह के किस्सों का ही असर रहा होगा कि मेरे सपने में जब अंग्रेज या मुगल आक्रमण करने के लिए आते तो वह बनजारों के ही भेस में होते। वे घोड़ों की बजाय भैंसों पर बैठकर आते। और हमारी बस्तियाँ वीरान हो जातीं। लोग पेड़ों पर टँगे नजर आते। सपना खत्म होने के बाद सभी लोग पेड़ों पर से उतर आते और अपने अपने काम में लग जाते। और बनजारे वहीं तालाब के किनारे पहुँच जाते।

तालाब का नाम था सुखवा का ताल। यह एक बेहद छिछला ताल था। यह विस्तार में काफी बड़ा था पर इसे बरसात में भी खड़े खड़े पार किया जा सकता था। संभवत टीला यहीं की मिट्टी से बना था। हो सकता है कि कभी यह गहरा रहा हो पर अब यह एक छिछले ताल में बदल गया था। लगभग पूरे ही ताल में करेमुआ फैला हुआ था जिसका साग अक्सर हमारे घरों में बनता।

तालाब का नाम सुखवा क्यों है, एक बार मैंने हनुमान मिसिर से पूछा था। उन्होंने बताया कि पहले इस तरह से दुकानें नहीं होती थी जहाँ सब कुछ मिल जाए। तो बनजारे आते थे कुछ सामान बेचते कुछ खरीदते और आगे बढ़ जाते। सुखवा ऐसे ही एक बनजारों के सरदार का नाम था जो अक्सर इस ताल के किनारे डेरा डालता था। उसी के नाम पर इस ताल का नाम सुखवा का ताल पड़ गया धीरे धीरे।

यह गर्मियों में इस कदर सूख जाता कि सूखकर इसकी मिट्टी चटक जाती। उनमें गहरी दरारें पड़ जातीं। इसी ताल के साथ एक बीजक जुड़ा था जिससे हमारे इलाके का बच्चा-बच्चा परिचित था। बीजक था, एक लाख लगाओ तो नौ लाख पाओ पता नहीं सुखवा इस पार या उस पार। इस बीजक में एक लाख खर्च करने पर नौ लाख मिलने का आश्वासन था पर पैसा खर्च करने की विधि और उसकी जगह नहीं निश्चित थी। हम सब इसमें पूरा विश्वास रखते और नौ लाख पाने के सपने देखते।

इस तरह के बीजकों की एक लंबी व्याप्ति थी। हर दो चार गाँव के बाद कोई न कोई ऐसी जगह मिलती थी जहाँ इस तरह का कोई अमूर्त-अनिश्चित बीजक प्रचलित होता। कहते हैं कि इस तरह के धन अमूमन बनजारों के होते थे जो चोर-डाकुओं के डर के मारे वह जगह-जगह छुपा देते थे। लोग इनके बारे में सोचने से भी डरते थे। लोगों का मानना था कि बनजारे अपनी धन-दौलत को जीवधारी बना देते थे। जो उस धन की अनंत काल तक रखवाली किया करता था।

खजाने को जीवधारी बनाने के भी अनेक किस्से थे। सबसे ज्यादा प्रचलित किस्सा यह था कि जमीन में जहाँ धन गाड़ा जाता वहीं भीतर एक बच्चे भर के बैठने की जगह बनाई जाती। कुछ इस तरह से कि जब वह जगह ऊपर से पाट दी जाय तब भी बच्चे के बैठने की जगह बची रहे। वहाँ खजाने को छुपाने से पहले आखिरी पूजा की जाती। पूजा में किसी बच्चे को भी शामिल किया जाता जिसे अफीम या कोई और नशीली चीज पहले ही खिला दी गई होती। बच्चा नशे की घातक मायावी दुनिया में खोया रहता। उसे खेलने के लिए खिलौने और खाने के लिए मिठाइयाँ दी जातीं। पूजा के बाद पूजा का दीप जलता छोड़ दिया जाता और गड्ढे को करीने से ऊपर से ढक दिया जाता।

गड्ढे को ढकने के बाद भीतर दो घटनाएँ एक साथ घटतीं। इधर दिया बुझता उधर बच्चे की साँस रुकती। इसी बच्चे की आत्मा अनंतकाल तक उस गड़े हुए खजाने की रखवाली करती।

कई बार खजाने के मालिक बिना रखवाला नियुक्त किए ही मर जाते। तब उनकी आत्मा ही खजाने के आसपास मँडराने लगती और उसकी रखवाली करती। कई बार खजाने की रखवाली कर रही आत्मा का उससे कोई सीधा रिश्ता नहीं होता पर वह खजाना देखते ही उस पर कुंडली मार कर बैठ जाती।

कई बार बनजारे अपने धन को जहाँ छुपाते उसके आसपास कहीं कोई पत्थर वगैरह लगा देते। और उसके साथ कोई पहेलीनुमा चीज प्रचलित कर देते। जिसके अर्थ में उस धन का राज छुपा होता। इन पहेलियों को बीजक कहा जाता। ये बीजक हम जैसे हजारों की लालसाओं के साथ जनम-जनम तक खेलते पर उनका अर्थ न खुलता। लाखों में कोई बिरला ही होता जिसे उन खजानों के करीब जाने का मौका मिलता। याकि उसमें से कुछ हासिल हो पाता।

इस तरह के किस्सों में बहुत सारे साँप भी थे। साँपों को धन-दौलत से बहुत प्यार था। वे अक्सर खजाने में ही रहते। ये साँप बड़े मायावी होते थे। सोना चाँदी हीरा मोती के बीच रहते रहते खुद उनका शरीर भी वैसा ही हो जाता। उनके बदन पर हीरे मोती जड़े होते। आँखें ऐसा चमकदार हीरा होतीं कि जो उनमें एक बार देख लेता वह कुछ और देखने के काबिल ही नहीं बचता। वह हमेशा के लिए अंधा हो जाता। उसे बस वही वही चमकदार आँखें ही अपने चारों तरफ दिखाई देतीं।

हमारे आसपास ऐसे हजारों किस्से तैर रहे थे। कई बार लोग ऐसे ही किसी किस्से से टकरा जाते। किस्सों से टकराने की इस घटना के बाद कई बार वे हमेशा के लिए बदल जाते। कई बार वे खुद भी किस्सों में ही समा जाते और वहाँ से उनकी वापसी कभी भी मुमकिन न हो पाती।

तो दूसरी तरफ ऐसे भी अनेक किस्से थे जहाँ किसी की समृद्धि या आगे बढ़ने को किसी न किसी किस्से से जोड़कर देखा जाता। खुद हम भी अपने पुरखे रामअभिलाष की समृद्धि को ऐसे ही किस्सों से जोड़कर देखते थे।

मैं खुद भी ऐसे किस्सों का हिस्सा बनना चाहता था और इसके लिए कोई भी कीमत चुकाने के लिए तैयार था। मैं खजानों का कोलंबस बनना चाहता था। इसके लिए मैंने

बहुत सारे किस्सों में अपनी आवाजाही बना रखी थी। इस मामले में मैं काफी सामाजिक व्यक्ति था। मैं अकेला नहीं था मेरे जैसे दूसरे भी अनेक थे।

खजाना पारस पत्थर था। जो कहीं भी हो सकता था। एक पल की लापरवाही भी हमें उस खजाने से इतनी दूर फेंक सकती थी जहाँ से दुबारा कई जन्मों तक शायद ही हम लौट पाते। किसी को भी दुबारा मौका नहीं मिलना था। इसलिए मौकों को पहचानना बेहद जरूरी था।

एक बार जब घर के लोग कहीं बाहर गए हुए थे और मैं घर में अकेला था मैंने घर के पश्चिम की ऊँची नीची जमीन की अकेले ही खुदाई की थी। मेरा पक्का अंदाजा था कि वहाँ कुछ न कुछ जरूर निकलना चाहिए।

मैं बिना रुके लगभग दोपहर तक खोदता रहा। मेरे पास समय बहुत कम था। शाम तक घर के लोग वापस आ जाने वाले थे। मेरी पिटाई भी लगभग तय थी पर मैं किसी भी कीमत पर अपने अनुमान की जाँच करना चाहता था।

तो मैं जब लगभग निराश ही हो जाने वाला था कि मेरा फावड़ा किसी पत्थर से टकराया। मैं आहिस्ता आहिस्ता मिट्टी हटाने लगा। सारी मिट्टी हटाने के बाद मैंने देखा कि वहाँ जाँत के दो बराबर बराबर टुकड़े मौजूद थे। उनको मैंने बाहर निकाल लिया। और खोदा तो मिट्टी की एक समूची मटकी मिली जो उल्टी पड़ी थी। उसे उठाया तो उसके नीचे एक हरे रंग का गोजर था। मैंने मटकी को जस का तस रख दिया और मिट्टी पाटने लगा। अब यहाँ कुछ और मिलना मुश्किल था। हरे गोजर ने मेरी उम्मीद खत्म कर दी थी।

शाम को घर पर मेरी खासी खबर ली गई। पर जाँत का वह आधा हिस्सा सिल के रूप में बहुत दिनों तक प्रयोग किया जाता रहा। जाँत का दूसरा हिस्सा बगल के ही बालगोविंद मिसिर उठा ले गए। पर इस घटना ने मुझे इस बात का भरोसा दिला दिया कि धरती के भीतर बहुत कुछ छुपा हुआ है। मैं अगर उसका थोड़ा-सा भी हिस्सा खोज निकालूँ तो मुझे जीवन भर कुछ और करने की जरूरत ही न पड़े।

मैं अकेला नहीं था। बहुत सारे मैं थे जो जीवन भर कुछ भी नहीं करना चाहते थे।

खजाने की खोज उर्फ अभिलाषपुर की अभिलाषाएँ

हमारी चमड़ी के सबसे भीतरी तहखानों में छुपी हुई कंगाली ही वह निर्णायक चीज रही होगी जिसने हमारी आँखों में इस कदर खजाने की चमक भर दी होगी। हमारे घरों के सबसे भीतरी तहखानों में छुपी कंगाली ने ही हमसे एक दूसरे के घर खुदवाए होंगे। जो जितना ही ज्यादा कंगाल उसकी आँखों में अमीरी के उतने ही बड़े सपने। उसके सपनों की उतनी ही लंबी उड़ान। और इस उड़ान का मेहनत या श्रम से कोई दूर का भी नाता नहीं।

श्रम को लेकर हमारे भीतर दोहरी बातें थीं। एक तो यह कि श्रम करने की हमारी कोई आदत ही नहीं रही थी। रामअभिलाष और रामइकबाल के शुरुआती दिनों को छोड़ दें तो हम श्रम करना कब का भूल चुके थे। इन दोनों की समृद्धि में भी उनके श्रम से बड़ा योगदान दान की जमीन और बाद में बेगार के श्रम का था। हमने अपने ऐसे किसी भी पुरखे के बारे में नहीं सुना था जो श्रम करके अमीर बन गया हो। हमने अपने आसपास ऐसे किसी को देखा भी नहीं था।

हमारे आसपास जो तमाम खेतिहर या श्रमिक जातियाँ थीं, वे सुबह से शाम तक पसीने में डूबी रहती थीं। फिर भी अक्सर वे नंगे बदन ही दिखाई देतीं। कपड़े उनके शरीर पर कभी कभार ही दिखते। इसके बावजूद वे अक्सर हमारे बाप दादाओं के पास आते। अनाज के लिए, रुपयों के लिए, कर्ज माँगते, गिड़गिड़ाते। अक्सर उन्हें यह कर्ज मिल भी जाता। जिसे वे एकमुश्त शायद ही कभी वापस कर पाते। हम चाहते भी नहीं कि वे हमसे पूरी तरह मुक्त हों कभी। उन्हें उनकी इस स्थिति की कीमत चुकानी पड़ती। यह समझने लायक हम जरा बाद में ही हो पाए। तब हमने भी कीमत वसूलना सीखा।

पर कीमत वसूलने के दिन बीत चुके थे। अब कीमत चुकाने के दिन थे और हम भरपूर कीमत चुका रहे थे। हम शायद किसी तरफ भाग निकलते। यहाँ पर फिलहाल ऐसा कुछ भी नहीं था जिसका लालच हमें रोके रखता। स्थितियाँ दिन पर दिन और भयावह होने की तरफ बढ़ रही थीं। ऐसे में हमारी काहिली के अलावा यह खजाना ही था जिसकी चमक ने हमें रोके रखा। हममें से हर एक को लग रहा था कि खजाना मिलते ही हमारी सारी समस्याएँ सदा सदा के लिए खत्म हो जाएँगी।

खजाना हमारी मरी आँखों का सपना था। जो अपने छोटे से छोटे रूप में मिल जाता तो भी शायद हम बच जाते। क्या सचमुच?

खजाने के लिए हमने बहुतेरी कोशिशें कीं। इन कोशिशों में आत्माओं से टकराना था। इसलिए उनको खुश करना बहुत जरूरी था। वह खजाने की खोज में हमारी मदद तो

कर ही सकती थीं। दूसरी आत्माओं के खिलाफ सुरागरशी भी कर सकती थीं। इस रास्ते पर तमाम दुष्ट आत्माएँ भी मिल सकती थीं इसलिए बजरंगबली की सिद्धि भी जरूरी थी। और तो और इस सिद्धि को छुपा के भी रखना जरूरी था नहीं तो आत्माएँ निकट ही न आतीं।

इस तरह की बहुतेरी कोशिशें साथ साथ चल रही थीं। जैसे एक कोशिश के रूप में मैं पैरों को धमकाता हुआ चलता था। लगातार कूदते हुए चलने जैसा। इससे जमीन के ठोस, कम ठोस या पोपली होने का पता चलना था। जहाँ भीतर कुछ होता वहाँ से धातुओं जैसी खनकन की उम्मीद थी। जहाँ भीतर जमीन खोखली होती वहाँ दूसरी तरह की गूँज सुनाई देती। कम से कम इतना तो पता चल ही जाता कि यहाँ कुछ हो या न हो पर जमीन कभी न कभी खोदी जरूर गई है।

हर आदमी अपने तई कोशिश कर रहा था। और हम एक दूसरे की नकल भी कर रहे थे। कूदते हुए, जमीन की टोह लेते हुए चलने की नकल भी बहुतेरे लोगों ने की। हमारी चालें कुछ इस कदर बदल रही थीं कि किसी पड़ोसी गाँव का कोई आदमी हमें देखता तो हमें इनसानों से भिन्न किसी और प्रजाति का समझ सकता था। हमारी आँखें अमूमन नीचे की तरफ होतीं। सर और हाथ नीचे झुके होते। हम एक दूसरे की बगल से निकल जाते और हमें पता भी न चलता क्योंकि दोनों ही पैर धमकाते हुए नीचे देखते, जमीन में कुछ खोजते हुए आगे बढ़ रहे होते।

मुश्किल यह थी कि जिस टीले पर अभिलाषपुर बसा हुआ था उसी टीले में धन-दौलत छिपे होने की सबसे ज्यादा संभावनाएँ थीं। हमारी मुश्किल यह थी कि हम ऐसा नहीं कर सकते थे कि एक तरफ से खुदाई शुरू कर दें और दूसरी तरफ तक खोदते चले जाएँ। यह असंभव था।

हमें दूसरी हिकमतों से काम लेना था। और दूसरों से छुप कर काम लेना था। यह तभी संभव था जब वे आत्माएँ हमारा साथ दें जो न जाने कब से खजानों की रखवाली में लगी हुई थीं। उन्हें वैसे भी सिद्ध करना था हमें।

हमने तमाम टोने-टोटकों का सहारा लिया। तमाम काली और लाल किताबें खरीदीं। वृहद इंद्रजाल के पन्ने पलटे। पाखाने से लौटते हुए बचा हुआ पानी बेर और बबूल के पेड़ों पर इक्कीस दिन तक चढ़ाया और भूतों-प्रेतों के प्रकट होने की कामना की। इस तरह से काम सिद्ध न होते देखकर अनेक तांत्रिकों और ओझाओं की शरण में गए। अनेक घरों में रिश्तेदार के रूप में ओझा-तांत्रिक आ बिराजे।

हम किनसे झूठ बोल रहे थे आखिर! छोटा सा तो था अभिलाषपुर। हम एक दूसरे के सारे रिश्ते-नाते जानते थे। उन सब के साथ उठना बैठना था हमारा। फिर अचानक इतनी बड़ी संख्या में इतने सारे रिश्तेदार कहाँ से प्रकट हो गए थे। कौन थे वे हमारे जो हमने उन्हें अपने घरों के भीतर पनाह दी थी? वे क्या करने वाले थे आखिर?

घर घर हवन हो रहे थे। अंडे कट रहे थे। बलियाँ दी जा रही थीं। और इस तरह वे उन जगहों को खोजने की कोशिश कर रहे थे जहाँ खजाना छुपा हो सकता था। उन सबने बताया कि अभिलाषपुर के नीचे इतनी धन-दौलत दबी हुई है कि उसके आगे सरकारी खजाने की दौलत भी पानी भरे। उसे निकालना ही होगा। खुद वह दौलत भी बाहर आने के लिए बेकरार है। उनके रखवाले अब अपने काम से मुक्ति चाहते हैं। वे चाहते हैं कि नए रखवाले उनकी जगह लें और उन्हें मुक्त करें।

और हैरत की बात है कि हममें से ज्यादातर रखवाले बनने के लिए राजी थे। पूरे इलाके की हवा ही जैसे बदल गई थी। हम उस हवा में सिर से पैर तक डूबे हुए थे। कई बार उस हवा के असर से बचे हुए लोग हमें बाहर निकालना चाहते। वे हमारा मजाक बनाते। हम पर लानत भेजते। हमें गालियाँ बकते पर हम उनकी भाषा भूल गए थे। कई बार हम ऐसा मुँह बनाते जैसे हमें उनकी बातें समझ में ही न आ रही हों। और यह पूरी तरह से झूठ भी नहीं था। हमको खजाने के अलावा कोई और बात नहीं समझ में आ रही थी इन दिनों।

हमने वैसे लोगों से बचने का सीधा रास्ता निकाला कि कटने लगे उनसे। पहचानना ही बंद कर दिया उन्हें। ऐसे रास्तों से चलना बंद कर दिया जहाँ कि वे मिल सकते थे। हम अपने किस्सों में खो गए। वे मिलते भी तो हम अपने अपने किस्सों से बतियाते हुए आगे बढ़ जाते।

हममें से हर कोई अकेला था। हम अलग अलग काम कर रहे थे। इसके बावजूद हम सब के भीतर एक ही तरह के सपने घर कर रहे थे। हममें से हर किसी को भरोसा था कि उसके हाथ एक बड़ी दौलत लगने वाली है। हम लगातार इस बात की योजनाएँ बनाते कि हम अपने हिस्से की दौलत कैसे खर्च करेंगे और दौलत थी की इन सारी योजनाओं के बाद भी बची रह जा रही थी।

सब कुछ बदल रहा था। आत्माएँ तक अपनी दौलत वापस माँगने लगी थीं। जैसे सास के मरने के बाद उसकी करधन, हँसुली या हार किसी बहू ने पहन रखा होता तो अक्सर सास की आत्मा उस पर सवार होकर चिल्लाती उतार मेरी करधन... उतार मेरी हँसुली और बहू बेबस करधन या हँसुली उतार फेंकती। थोड़े दिन ओझाई होती और उसके

बाद बहू का भी उन जेवरों से लगाव इतना गहरा होता कि वह दुबारा उन्हें पहने नजर आती और वही घटना फिर फिर से दोहराई जाती। कोई भी पीछे हटने को न तैयार होता।

कोई नींद में ही किसी से न जाने क्या बात करते हुए चलाता दिखाई देता तो कोई सोते सोते अचानक से कुछ चिल्लाते हुए जाग उठता। जैसे कोई आग सी धधकती रहती हमेशा। लोग व्याकुल बेचैन हमेशा कुछ खोजते तलाशते दिखते। आँखें हमेशा कटोरों में बिछलती रहतीं। लोगों की नींद गायब हो गई थी। लगातार जागते रहने से सबकी आँखें सूज रही थीं। और वहशत से भरी लाल-लाल आँखें कुछ इस तरह से लगती थीं जैसे उनमें से खून टपक रहा हो। उनमें एक भयानक रेगिस्तानी चमक थी।

ढाई सौ साल पुराने सपने का अंत

एक दिन अफवाह उड़ी कि सजीवन दुबे को एक गगरी भर सोने की मुहरें मिली हैं। अगले ही दिन सजीवन दुबे के यहाँ डकैती पड़ी। डकैतों ने सजीवन दुबे को बहुत तड़पाया पर चाँदी के दो-चार सिक्कों से ज्यादा कुछ नहीं पा सके। हवा में यह बात खुलेआम तैर रही थी कि सारे के सारे डकैत अभिलाषपुर के ही थे और तो और उनमें एक बाप-बेटे का जोड़ा भी शामिल था।

अगले दिन राधेश्याम के घर के पीछे की दीवाल खुदी पाई गई। सुबह देखा तो वहाँ मिट्टी के पुराने बर्तनों के टुकड़े मिले और दो-चार चाँदी के सिक्के भी। अगले दिन रामजस का पिछवाड़ा खुदा हुआ था। वहाँ सुबह सोने का एक सिक्का गिरा हुआ मिला। हालत यह हुई कि रोज किसी न किसी तरफ से चिल्लाहट मचती कि कोई उसका घर खोद रहा है। और जब तक लोग वहाँ पहुँचते तब तक किसी दूसरे का अगवाड़ा-पिछवाड़ा खुद जाता। फावड़े और कुदालों को उपयोग बदल गया था। अब वे खेतों में नहीं घरों में चल रहे थे।

उधर तांत्रिकों की अपनी दुनिया थी जो हमारे पीछे पीछे काम कर रही थी। बल्कि अब उसने हमारे आगे आगे चलना शुरू कर दिया था। कई तांत्रिकों ने बताया कि पूरे किले की ही खुदाई करनी पड़ेगी। पर अगर रखवालों को साध लिया जाय तो कम खुदाई से भी काम चल सकता है। पर यहाँ रखवाले बहुत ज्यादा हैं। सैकड़ों की संख्या में। उनमें से हर किसी की एक अलग माँग है जिसे पूरा करना ही पड़ेगा।

ये शर्तें बेहद अजीबोगरीब थीं। कहीं बेटे की कुर्बानी माँगी जा रही थी कहीं बेटी की। कहीं बेटी के पहले मासिक का खून माँगा जा रहा था तो कहीं पहले संभोग का। उसे हिंदुओं से गाय की कुर्बानी चाहिए थी, मुसलमानों से सूअर की। कहीं वह पड़ोसी के बच्चे की बलि माँग रहा था तो कहीं कोई अपने ही किसी विकलांग बच्चे की बलि देकर संपन्न होने का ख्वाब देख रहा था जिनकी कि अभिलाषपुर में कोई कमी नहीं थी।

बहुत धन था पर बिना कुछ अवांछित किए, बिना किसी गर्हित कर्म में लिप्त हुए उसका एक छोटा सा हिस्सा भी मिल पाना चमत्कार था। और हम किसी भी कीमत पर यह सब कुछ करने के लिए तैयार थे। हमें वह सारी दौलत चाहिए थी भले ही वह किसी भी कीमत पर क्यों न मिले।

रखवालों की आत्माएँ ढाई सौ साल से सो रही थीं। ढाई सौ साल पुरानी नींद ने उनके भीतर अतृप्ति का सागर भर दिया था। उनकी वासनाएँ विकृति के चरम पर थीं। वह आत्माएँ अपनी उन सारी वासनाओं की तृप्ति चाहती थीं। पर उनके पास शरीर नहीं था। उन्हें हमारा शरीर चाहिए था। उसके बाद उनकी सारी शर्तें माफ थीं क्योंकि शरीर मिलते ही वह खुद इतनी सक्षम हो जाने वाली थीं कि वह अपना मनचाहा कुछ भी हासिल कर लेतीं।

हमने अपनी चेतना पहले से ही उनके नाम कर रखी थी। शरीर देने में हमें भला क्या एतराज होता। इसके बाद चारों तरफ वह हाहाकार मचा कि आसपास के गाँवों के लोग भी अपना घरबार छोड़ कर भागने लगे। कुछ भी अप्रत्याशित कभी भी घट जाता। एक दिन रात में नारा लगा 'आज रात जो सोएगा पत्थर का हो जाएगा'। नींद वैसे भी आजकल किसे आ रही थी! हम एक बौखलाई हुई उत्सुकता के साथ बाहर आ गए। चारों तरफ बेहद धीमे स्वर में अजीबोगरीब ध्वनियाँ तैर रही थीं। जैसे कराह, चीख, सिसकारी और प्रलाप मिला दिए गए हों आपस में।

जब यह आवाजें थोड़ी मद्धिम पड़ीं तो हम अपने घरों में लौटे। हमारे घर बदल चुके थे हमेशा के लिए। घरों में सुरंगें खुदी हुई थीं। उन रास्तों से आया बहुत सारा धन हमारे घरों में था। उसकी चमक हमें अंधा कर रही थी। इसी चमक पर हमनें अपना जीवन वार दिया था। पूरी रात हम उस दौलत का हिसाब लगाने की कोशिश करते रहे। पर यह हमारी क्षमता के बाहर की बात थी।

सुबह हुई। कई सुबहें हुईं। कई रातें बीतीं। हम रात और दिन से निरपेक्ष हो गए थे। हमें यह भी नहीं पता था कि हमारे पड़ोसियों के घरों में क्या चल रहा है। हमें तो यह भी

नहीं पता था कि खुद हमारे ही घरों में हमारे साथ क्या हुआ है। हमें नहीं पता चल पाया कि उन सुरंगों में हमारे ही घरों से कोई कराह रहा है।

कई दिनों बाद हमें यह सूझी कि हम उन सुरंगों में भी झाँकें जिनके रास्ते यह ऐश्वर्य हमारे घरों में आया है। उन सुरंगों में किसी की बेटी तड़प रही थी तो किसी की बहन। अनेक सिर और धड़ कटे हुए पड़े थे। वे अभी भी जिंदा थे। ऐसे भी थे जो जल्दी ही पैदा होने वाले थे, पर उसके पहले ही उन्हें खींच बाहर किया गया था। उनकी कराह से पूरी सुरंग भरी हुई थी। अभी थोड़े समय पहले तक वे सशरीर हमारे साथ थे। पर हम उन्हें पहचान ही नहीं पाए। उनकी कराहें हमें एक मदहोश करने वाले संगीत की तरह सुनाई पड़ीं। हम सुरंग में आगे बढ़ गए। भीतर एक गजब की रोशनी दिखाई दे रही थी।

खजाने के नए रखवालों की नियुक्ति हो चुकी थी।

सुरंग के भीतर और बाहर

खजाने के साथ बहुत सारे किस्से भी बाहर निकल आए थे। और वे हमारे जीवन में इस तरह से घुलमिल गए थे कि किस्से और हकीकत के बीच का अंतर हमेशा के लिए खत्म हो गया था। वह दीवार जो दोनों के बीच एक संतुलित दूरी बनाकर चलती थी वह हमने कब की ढहा दी थी। हमारा खुद पर कोई जोर नहीं बचा था। अब यह हमारे हाथ से निकल गया था कि कब हम किस्सों की दुनिया में रहेंगे और कब हकीकत की दुनिया में। किस्से भी अनेक थे। हर आदमी एक अलग किस्से की गिरफ्त में था।

यह गिरफ्त बहुत भयानक थी। हम इस गिरफ्त के अलावा बाकी सब कुछ भूल गए थे। हम बगल से गुजर रहे अपने पड़ोसी तक को नहीं पहचान पा रहे थे। हम अपने दोस्तों को भूल गए थे। हम अपने माँ-बाप-भाई-बहन-बेटा-बेटी सब को भूल जा रहे थे। कभी कभार भूले-भटके हम उन्हें पहचानते भी तो तुरंत ही कुछ इस तरह से फिर भूल जाते जैसे आधी रात को देखा गया कोई धुँधला सपना।

लोग हवा में ही किसी किस्से से बात करते दिखाई देते। शून्य में ताकते और ठहाका लगाते। हवा में न जाने किससे हाथापाई करते। कई बार दुखी और उदास होते, रोते। तब भी उन्हें सचमुच के किसी दोस्त की जरूरत न महसूस होती।

मेरे पिता खुद को ही अपना पिता मान बैठे थे। उनका मेरे प्रति व्यवहार बदल गया था। वह मुझसे इस तरह से बात करते थे कि मैं उनका बेटा न होकर पोता होऊँ। मेरे

पिता बीच से न जाने कहाँ गायब हो गए थे। वह कौन सा किस्सा था जो उनको लील गया था। कि उनके शरीर में पिता के पिता आ बैठे थे। ऐसा करके शायद वह अपने पिता और दादा से संवाद कर रहे थे, इस उम्मीद में कि वह वहाँ से कुछ सुराग लेकर लौटें खजानों के बारे में! या फिर क्या पता। उन्हें कुछ पता चल भी जाता तो क्या पता वह खुदाई कहाँ पर करते, वर्तमान में या फिर उन्हीं किस्सों की दुनिया में।

बलदेव मिसिर ने खजाने से मिले हुए धन से एक चमचमाती कार खरीदी। जब वह कार लेकर सुरंग से बाहर निकले तो अपने घर का रास्ता ही भूल गए। पूरे अभिलाषपुर का हार्न बजाते हुए उन्होंने बीसों चक्कर लगाया। कई जगहों पर उतरकर हवा में न जाने किन लोगों से रास्ता पूछा पर उन्हें अपने घर का रास्ता नहीं मिला तो नहीं मिला। वह अभी भी हार्न बजाते हुए चक्कर पर चक्कर काट रहे हैं और न जाने किससे किससे अपने घर का रास्ता पूछ रहे हैं।

उनका घर उनके इंतजार में कई सालों से बंद है। दुआर और आँगन में झाड़-झंकाड़ उग आए हैं। आँगन में एक न जाने कौन सा पेड़ उग आया है जिसकी डालियों पर फलों की तरह चमगादड़ लटकते रहते हैं। उस घर की तरफ कोई नहीं जाता। लोगों ने उसे अभिशप्त घर मान लिया हैं।

वही क्या पूरा का पूरा टीला ही अभिशप्त मान लिया गया है। अब टीले पर सिर्फ वही लोग आते-जाते दिखाई देते हैं जिन्होंने खजानों वाले किस्सों की दुनिया में अभी भी जबर्दस्त आवाजाही बना रखी है। वे किसी को भी नहीं पहचानते। हमारे बगल से न जाने क्या बुदबुदाते हुए निकल जाते हैं और हमारी तरफ देखते भी नहीं। हमारे राम राम और सलाम का जवाब नहीं देते। उनके लिए हम और हमारी दुनिया अदृश्य हो चुके हैं। शायद हमेशा के लिए।

मेरे जैसे जो लोग किस्सों की दुनिया से निकलने में कामयाब रहे या किसी दूसरे किस्से के द्वारा ही बाहर खींच लिए गए, उन सबने टीला हमेशा हमेशा के लिए छोड़ दिया। कुछ ने अपने घरों को गिरा दिया। कुछ ने उन्हें जस का तस रहने दिया। ज्यादातर तो पहले ही खोदे-पाटे जा चुके थे।

टीला उस समय की तुलना में बहुत ज्यादा वीरान दिखाई देता है जबकि रामअभिलाष ने उस पर अपना घर बनाया था। टीले पर नए नए पैदा खंडहरों के बीच तमाम झाड़-झंखाड़ उग आए हैं। उस तरफ देखना ही एक भुतहा एहसास से भर देता है। रातों में अभी भी वहाँ से अजीब अजीब आवाजें आती हैं जो हमें अपनी तरफ खींचती हैं। उन आवाजों में एक पागल सम्मोहन है।

सुरंग में जाने से बचे हुए लोग आसपास के गाँवों और शहरों में फैल गए हैं। कई नए अभिलाषपुर बसने की राह पर हैं। आसपास के तमाम लोग जिन्होंने अपने को खजानों के प्राणघातक सम्मोहन से बचा रखा था हम पर हँसते हैं। थोड़ी देर की एक शरमीली चुप्पी के बाद हम भी उनके साथ हँसने लगते हैं।